नियमसार, गाथा १००।

सर्वत्र आत्मा उपादेय (-ग्रहण करनेयोग्य) है, ऐसा कहा है। पहला है न? **यहाँ (-इस गाथा में), सर्वत्र आत्मा उपादेय (-ग्रहण करनेयोग्य) है, ऐसा कहा है।** अब पहला ज्ञान में लेते हैं। **आत्मा वास्तव में अनादि-अनन्त,...** वस्तु है। सत् है... सत् है... सत्ता है। उसे आदि-अनन्त क्या होगा? अनादि-अनन्त है। **अमूर्त,...** है। रंग, गन्ध, स्पर्शरहित चीज़ है। **अतीन्द्रियस्वभाववाला,...** आत्मा है। अतीन्द्रिय स्वभाववाला। इन्द्रियों से ग्राह्य हो, ऐसा वह नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में भी इन्द्रियों से ग्राह्य हो, ऐसा वह नहीं है।

शुद्ध, सहज-सौख्यात्मक है। शुद्ध स्वभाविक सुखस्वरूप है। आनन्दस्वरूप है। स्वभाविक उसका स्वभाव ही आनन्द है। अतीन्द्रिय आनन्द, स्वभाविक अतीन्द्रिय आनन्द

शुद्ध, ऐसा जिसका स्वभाव है। यह आत्मा की व्याख्या है। ऐसा जो **सहज शुद्ध ज्ञानचेतनारूप से परिणमित...** ऐसा जो भगवान आत्मा स्वभाविक शुद्ध ज्ञानचेतना। दया, दान, वह कर्मचेतना है और हर्ष-शोक, वह कर्मफलचेतना है। वह वस्तु आत्मा में नहीं है। यहाँ तो **ज्ञानचेतनारूप से परिणमित...** अनन्त ज्ञानस्वरूप प्रभु है। उसमें दृष्टि देने से **ज्ञानचेतनारूप से परिणमित जो मैं...** ज्ञान की पर्यायरूप से, अवस्थारूप से, सम्यग्ज्ञान की दशारूप से हुआ वह **मैं उसके (अर्थात् मेरे) सम्यग्ज्ञान में सचमुच वह (आत्मा) है...** आत्मा में वह सम्यग्ज्ञान है। उस सम्यग्ज्ञान में आत्मा है। वह सम्यग्ज्ञान कोई शास्त्र से या पर से प्रगट होता है—ऐसा नहीं है। आहाहा!

ऐसा जो सम्यग्ज्ञान, उसमें आत्मा है, अर्थात् आत्मा के आश्रय से सम्यग्ज्ञान हुआ है। उस सम्यग्ज्ञान के समीप में प्रभु विस्तरता है। सम्यग्ज्ञान उसे कहते हैं कि मोक्ष के मार्ग का अवयव है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन अवयवी, उसका एक अवयव सम्यग्ज्ञान है। वही ज्ञान, सम्यक् उसे कहते हैं कि जिस ज्ञान में आत्मा समीप में वर्तता है। आहाहा! राग और पुण्य-पाप के विकल्प से दूर वर्तता है। वह ज्ञान आत्मा में समीप में वर्तता है। ऐसी बात है। उस मेरे ज्ञान में **परिणमित जो मैं...** पर्याय में परिणमित है, ऐसा सम्यग्ज्ञान, उसमें वास्तव में **वह (आत्मा) है;...** आहाहा! उस आत्मा के अवलम्बन से सम्यग्ज्ञान हुआ है, इसलिए सम्यग्ज्ञान में आत्मा समीप में है। सम्यग्ज्ञान में राग की मन्दता और निमित्तों की समीपता है, इसलिए सम्यग्ज्ञान होता है—ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

धर्म का पहला (सोपान) सम्यग्ज्ञान है। यहाँ ज्ञान से लिया है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का कारण है। उसमें पहला सम्यग्ज्ञान लिया है। उस ज्ञान से परिणमित... वस्तु तो ज्ञानस्वरूप अनादि-अनन्त अमूर्त है, परन्तु उसके लक्ष्य में वर्तमान में ज्ञानरूप परिणमित, सम्यग्ज्ञानरूप दशा हुई, उस सम्यग्ज्ञान दशा में आत्मा समीप वर्तता है। आत्मा ही उसका आश्रय है। सम्यग्ज्ञान में आत्मा का ही आश्रय है। सम्यग्ज्ञान में दूसरे किसी का आश्रय नहीं है। आहाहा! ऐसा सम्यग्ज्ञान है। बड़ा ऐसा कहे संस्कृत, व्याकरण, ग्यारह अंग के शास्त्रज्ञान का पठन, वह सम्यग्ज्ञान नहीं है। सम्यग्ज्ञान तो जहाँ आत्मा समीप में वर्तता है, जिसके ध्येय में आत्मा है। सम्यग्ज्ञान में ध्येय में, आश्रय में, अवलम्बन में आत्मा है; इसलिए उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। सम्यग्ज्ञान के समीप में प्रभु आत्मा है। आहाहा! और

वह समीप में प्रभु है तथा दया, दान, पुण्य-पाप के विकल्पों से सम्यग्ज्ञान दूर-दूर है। आहाहा! ऐसी बातें पूरे दिन सवेरे भी यह और शाम को भी यह। ऐई.. कनुभाई! आहाहा! बापू! मार्ग तो यह है, भाई! अनन्त काल हुआ, प्रभु! चौरासी के अवतार में से नजर नहीं की। वह नजर नहीं की, भाई! भूल गया। आहाहा! माता के गर्भ में से जब जन्मा, जन्मकर छह-बारह महीने निकाले, उस समय का याद है तुझे? आहाहा! इस भव की विद्यमान हुई अवस्था। माता ने किस प्रकार इसे... आहाहा! दूध किस प्रकार पिलाया? दो पैर ऐसे लम्बे करके उसमें बिठाकर नीचे दस्त कराया। दोनों पैर लम्बे करके फिर लड़के को दस्त कराने बिठाते हैं न? याद है?

यहाँ कहते हैं कि इस भव में भी बीती हुई याद नहीं, इसलिए 'नहीं है'—ऐसा कैसे कहा जाए? प्रभु! इस भव में हुई बात बीत गयी, उसे 'नहीं है'—ऐसा कैसे कहा जाए? इसी प्रकार अनन्त भव में बीत गयी, बापू! आहाहा! अनन्त-अनन्त भव के एक-एक क्षण में अनन्त दु:खों के भव भोगे हैं। वह भूल गया, इसलिए 'नहीं है'—ऐसा कैसे कहा जाए? उन्हें याद नहीं करता, इससे 'नहीं है'—कैसे कहा जाए? याद करे तो है और नहीं तो नहीं (-ऐसा नहीं है)। आहाहा! यहाँ तो मैं तो आत्मा अनादि-अनन्त भगवान वास्तव में हूँ। यह मेरा जो सम्यग्ज्ञान है, इसमें वह आत्मा ही वर्तता है। उस आत्मा के अवलम्बन से मुझे सम्यग्ज्ञान हुआ है। आहाहा! कोई देव-गुरु-शास्त्र के अवलम्बन से भी नहीं। आहाहा! कठिन काम है। धर्म अपूर्व है न! पूर्व में कभी किया नहीं, इससे वस्तु अपूर्व ही है। इस मेरे ज्ञान में परिणमित को वास्तव में आत्मा ही है। आहाहा! एक बात।

अब सम्यग्दर्शन। दूसरा, सम्यग्दर्शन। इसमें दूसरी भाषा लेंगे **पूजित परम पंचम गति की प्राप्ति...** आहाहा! सिद्धगति, वह पूजित परम गति है। पूजित परम पंचम गति है। यह चार गति—नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देव—यह तो भटकने की गति है। वह तो पूजित परम पंचम गति... आहाहा! पूजनेयोग्य **परम पंचमगति की प्राप्ति के हेतुभूत...** देखा? सम्यग्दर्शन में यह डाला है। आहाहा! **पंचमगति की प्राप्ति के हेतुभूत पंचमभाव की भावनारूप से परिणमित...** आहाहा! उसमें **सहज शुद्ध ज्ञानचेतनारूप से परिणमित...** ऐसा था। सहज शुद्ध ज्ञान। इसमें तो **पंचमभाव की भावनारूप से परिणमित...** ज्ञायकभाव जो त्रिकाल, पंचम भाव जो उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक चार पर्याय है, उनसे वह

अलग चीज़ है। द्रव्य में ये चार भाव नहीं हैं। क्षायिकभाव भी द्रव्य में नहीं, तो उदय — राग-द्वेष के भाव—तो किसमें अन्दर हों? पंचमभाव ऐसा जो भगवान त्रिकाली।

पंचमभाव की भावनारूप से... परन्तु बात क्या कही? कि **परम पंचमगति की प्राप्ति के हेतुभूत...** पर्याय ली है। पंचम गति की प्राप्ति का कारण पंचम भाव की भावना। पंचम भाव, पंचम भाव परिणमित... परिणमित... त्रिकाली पंचम भावरूप से परिणमित। भावनारूप से अर्थात् विकल्प और कल्पनारूप से रहा हुआ - ऐसा नहीं। पंचम भाव की भावना अर्थात् एकाग्ररूप से परिणमित। भावना का अर्थ यह है। जयसेनाचार्य की टीका में श्रावक का अधिकार है। समकिती श्रावक है, वह जब सामायिक में बैठता है, तब किसी समय उसे शुद्धोपयोग भी आ जाता है। शुद्धोपयोग की भावना आ जाती है, ऐसा पाठ है। अर्थात् उसे भावना का अर्थ ऐसा करे कि वह तो उसका भाव आवे या विकल्प (कि) ऐसा होवे तो ठीक। ऐसा उस भावना का अर्थ करते हैं। (किन्तु) ऐसा नहीं है।

पंचम गुणस्थानवाला सच्चा श्रावक सामायिक में बैठता, तब किसी समय उसे शुद्धोपयोग हो जाता है। पुण्य-पाप के विकल्प छूटकर शुद्धोपयोग हो जाता है। उसे पंचम भाव की भावना कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! इसका नाम सामायिक। यहाँ तो सामायिक के नाम की भी खबर नहीं होती। **पंचमभाव की भावना...** त्रिकाली भगवान ज्ञायक जो अस्ति तत्त्व है। अस्ति है, वह पूर्ण है। पूर्ण है, वह पूर्ण पवित्र है। पवित्रता की एकाग्रतारूप से परिणमित **जो मैं, उसके सहज सम्यग्दर्शनविषय में...** उसके सहज सम्यग्दर्शन। **(अर्थात् मेरे सहज सम्यग्दर्शन में)...** उस पंचम भाव की भावना, उस पंचम भाव का विषय, ऐसी भावना वह पर्याय सम्यग्दर्शन की, उस **सहज सम्यग्दर्शनविषय में...** ऐसी जो पर्याय सहज सम्यग्दर्शन से परिणमित, उसका विषय। **(अर्थात् मेरे सहज सम्यग्दर्शन में) वह (आत्मा) है;...** सम्यग्दर्शन परिणमित में विषय में, ध्येय में आत्मा है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन के ध्येय में... सम्यग्दर्शन भी नहीं। वह पर्याय है। यहाँ ऐसा कहा है कि **पंचमभाव की भावनारूप से परिणमित...** यह पर्याय है। **जो मैं उसके सहज सम्यग्दर्शनविषय में...** उसके त्रिकाली वस्तु के स्वभाविक सम्यग्दर्शन के विषय में **(अर्थात् मेरे सहज सम्यग्दर्शन में) वह (आत्मा) है;...** सम्यग्दर्शन की पर्याय में आत्मा

की ओर झुकता है। आहाहा! देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, वह समकित और नव तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा, वह समकित, वह नहीं। सम्यग्दर्शन के विषय में तो पंचम भाव वर्तता है। वह सम्यग्दर्शन पंचम भाव की परिणति है, पंचम भाव की पर्याय है। पंचम भाव है, वह द्रव्य है। पंचम भाव, वह त्रिकाली द्रव्य-वस्तु है, उसकी भावना-एकाग्रता वह पर्याय है। उस पर्याय का विषय है, वह पंचम भाव है। आहाहा! ऐसा कठिन काम है। जन्म-मरणरहित होने का मार्ग ऐसा है। चौरासी के अवतार किये, उन्हें छोड़ने का पन्थ यह है। बाहर से मानो यह किया... यह किया... यह किया... इसलिए उसमें से आ जायेगा, उसके निषेध के लिये आत्मा-आत्मा। मेरे ज्ञान परिणमन में आत्मा, मेरे सम्यग्दर्शन के विषय में आत्मा... आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र भी मेरे सम्यग्दर्शन के विषय में नहीं है। आहाहा! है या नहीं? कठिन लगे या दूसरा लगे। क्या हो? प्रभु परमात्मा जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ का मार्ग-वस्तुस्थिति तो यह है। उनके कथन और उनके कहे हुए शास्त्र, वह प्रभु के श्रीमुख से निकले हुए, वह श्रीमुख से निकली हुई ध्वनि ऐसा वह कहते हैं कि प्रभु! आहाहा!

पंचमगति की प्राप्ति के हेतुभूत पंचमभाव की भावनारूप से परिणमित... आहाहा! कितने शब्द आये? **पूजित परम पंचमगति...** ये सब 'प-प' आये। उसकी प्राप्ति, उसका हेतु पंचमभाव, उसकी **भावनारूप से परिणमित जो मैं, उसके सहज सम्यग्दर्शनविषय में (अर्थात् मेरे सहज सम्यग्दर्शन में) वह (आत्मा) है;...** आहाहा! नवतत्त्व की श्रद्धा कहते हैं न? उस नव में एक आ गया। एक की यथार्थता हुई, उसमें आठ नहीं है—ऐसा ज्ञान उसमें आ जाता है। आहाहा! एक वस्तु पूर्णानन्द के नाथ को दृष्टि में लेने पर, उसकी पर्यायें उसमें नहीं, ऐसा ज्ञान आने पर उस ज्ञान में नवतत्त्व की श्रद्धा आ गयी। आहाहा! ऐसी बातें हैं। साधारण लोगों को तो यह नया निकाला होगा? ऐसा कैसे कहते हैं? कितने ही कहते हैं ऐई! कान्तिभाई! सोनगढ़वालों ने यह नया निकाला। अपना चलता पन्थ है, वह क्रियाकाण्ड का जो है, वह बराबर है और यह नया निकाला। भगवान! ऐसा रहने दे, प्रभु! नया पन्थ नहीं, प्रभु! यह पन्थ अनादि का परमात्मा जिनेश्वरदेव का यह पन्थ है। यह वाड़ा नहीं, यह पक्ष नहीं, यह अलग पन्थ नहीं; यह वस्तु का स्वभाव है। आहाहा! इसलिए ऐसा कहा न? मेरा भाव पंचम गति की प्राप्ति का भाव, पंचम भाव की भावना। **भावनारूप से परिणमित जो मैं उसके सहज सम्यग्दर्शनविषय में (अर्थात्**

मेरे सहज सम्यग्दर्शन में) वह (आत्मा) है;... इसमें पन्थ कहाँ आया ? इसमें तो वस्तु आयी। आहाहा!

वीतराग जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ ने यह कहा, प्रभु! ठीक लगे, न लगे। दूसरे को एकान्त लगे कि यह व्रत और नियम और यह सब करना नहीं ? तो ठीक यह खोज निकाला। अब ऐसा भी बोलते हैं। यशपालजी! यह व्रत, तप बापू! वह ऐसे कठोर किये थे। युवावस्था में ऐसी कठोर क्रिया थी। बहुत कठोर क्रिया। आहाहा! दो-दो दिन तक पानी की बूँद नहीं मिलती। निर्दोष। ऐसे दिन व्यतीत किये हैं। पानी बिना अकेले छाछ से चलाया है। उस समय उस क्रिया में माना था। ऐसी सख्त क्रिया थी परन्तु वह सब शुभभाव की क्रिया है। वह कोई धर्म-वर्म नहीं है। आहाहा! हम आहार लेने जाएँ, सेठियों की बहुयें काँपें, काँपें... सके नहीं। ३०-३५ वर्ष की उम्र, आहार लेने जायें और निर्दोष ऐसा चाहिए। जरा भी पानी का कलश नीचे पड़ा हो, छुआ हुआ पानी अन्दर मात्र। महिला आहार देने उठे और यदि उसकी साड़ी छू जाए, बस घर बन्द। उसके घर से आहार-पानी नहीं लें। ऐसे कितने वर्ष निकाले हैं। यह तो उस समय। बापू! यह सब क्रिया कष्ट, यह कहीं मूल बात / धर्म नहीं है। आहाहा!

यह तो कहते हैं कि **(अर्थात् मेरे सहज सम्यग्दर्शन में)... पूजित पंचमगति की प्राप्ति के हेतुभूत...** आहाहा! ऐसे **पंचमभाव की भावना...** यह हेतु। आहाहा! उस **भावनारूप से परिणमित जो मैं, उसके सहज सम्यग्दर्शनविषय में...** मेरा प्रभु है। आत्मा मेरे सम्यग्दर्शन में है। सम्यग्दर्शन में कोई देव-गुरु-शास्त्र या भेद नहीं है। आहाहा! दो बोल हुए। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन।

अब चारित्र। चारित्र में आत्मा है। चारित्र उसे कहते हैं, प्रभु! पंच महाव्रत के परिणाम और समिति, गुप्ति, देखकर चलना, वह कहीं चारित्र नहीं है। आहाहा! देखकर चलना, विचारकर बोलना, अशुभ को रोककर शुभ करना, वह कोई चारित्र नहीं है। आहाहा! चारित्र तो चरना। तिर्यंच हो, वह कुछ चरे, वह वस्तु चरता है या वस्तु बिना चरे ? ढेले खाये ? हरियाली ऐसे जम गयी हो, उसे तिर्यंच खाता है - चरता है। इसी प्रकार चारित्र अर्थात् अन्दर जम गया आनन्द का नाथ, प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द का दल है, उसे अनुभव करे, उसका स्वाद ले, उसे खाये, उसका अनुभव करे, उसका नाम चारित्र है। कान्तिभाई!

ऐसी बातें हैं। आहाहा! परन्तु यह सब निश्चय की बात है। किन्तु उसके साधनरूप से व्यवहार चाहिए न? ऐसा कहते हैं। व्यवहार होता है, परन्तु साधनरूप से नहीं, जाननेरूप से है।

जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक ज्ञानी को भी व्यवहार आता है, राग आता है परन्तु वे जानते हैं कि बन्ध का कारण है। राग है, वह बन्ध का कारण है परन्तु कमजोरी के कारण आये बिना रहता नहीं। आता है, इसलिए आदरणीय है - ऐसा नहीं। आता है, इसलिए आदरणीय है और हितकर है, (ऐसा नहीं है)। ज्ञानी को भी आता है, इसलिए हितकर है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग जरा कठिन है।

अब चारित्र। चारित्र में **साक्षात् निर्वाण प्राप्ति..** का कारण। देखा? उस सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन में मुक्ति की साक्षात् प्राप्ति नहीं थी। आहाहा! सम्यग्दर्शन और ज्ञानसहित जो चारित्र है, वह **साक्षात् निर्वाण प्राप्ति के उपायभूत,...** आहाहा! तीनों में फेरफारवाली भाषा है। **साक्षात् निर्वाण (मुक्ति) प्राप्ति के उपायभूत,...** अकेला सम्यग्दर्शन और ज्ञान वह कहीं साक्षात् मोक्ष का कारण नहीं है। अन्दर चारित्र, सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक, अन्दर में आनन्द की रमणता में जमावट जम जाए, अतीन्द्रिय आनन्द में जम जाए दल जम जाए... आहाहा! जैसे सर्दी में घी जम जाता है, वैसे आत्मा रागरहित स्थिररूप ज्ञान में जम जाए। आहाहा! वह साक्षात् मुक्ति का कारण चारित्र है। परन्तु चारित्र की व्याख्या बहुत कठिन, बापू! आहाहा!

यह नग्नपना लिया, वस्त्र छोड़े, पंच महाव्रत के नाम धराये, इसलिए चारित्र है, बापू! ऐसा नहीं है। भाई! यह किसी व्यक्ति के दोष की बात नहीं है, प्रभु! यह वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! विरुद्ध हो, उसे भी टलकर प्रभु! तेरा कल्याण होओ। विरुद्ध भाव में न रहो। विरुद्ध भाव में तो प्रभु! भविष्य में काल बिताना पड़ेगा। कठिन पड़ेगा, प्रभु! आहाहा! धर्मी की भावना यह नहीं होती। धर्मी की भावना तो सब आत्माएँ निर्वाण पद को प्राप्त करें, केवल (ज्ञान) प्राप्त करें.... प्राप्त करें। अरे रे! ऐसे दुःख के समुद्र में पड़े हैं। उस दुःख के समुद्र में रहना, बापू! ठीक नहीं, प्रभु! कहते हैं। आहाहा! मुझे तो ठीक नहीं परन्तु दूसरों के लिये भी मुझे ठीक नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा! सब भगवान हैं। वे दुःख प्राप्त करें, नरक और निगोद के दुःख, बापू! सुनने में कठिन पड़े ऐसा... आहाहा!

अक्षर के अनन्तवें भाग निगोद को (ज्ञान का) उघाड़ रह गया। कितना हीन हो गया, कितनी दुःख की दशा? वह दशा जितनी हीन हो गयी, उतना दुःख। ओहो! संयोगरूप से नारकी का दुःख कहलाता है। अन्दर की हीनदशारूप का दुःख निगोद का है। आहाहा! द्रव्यरूप से निगोद का जीव भी परमेश्वर है, हों! परन्तु पर्याय में ऐसी हीनदशा हो गयी है कि दूसरे जीव उसे जीव है, ऐसा स्वीकार करने को (तैयार नहीं होते)। आहाहा!

एक वचन ऐसा है। प्रभु! ऐसे कितने निगोद में गये क्योंकि उन्हें इस आत्मा के तत्त्व के अस्तित्व को उड़ा दिया। यह नहीं। सब राग से होता है, इससे होता है, यह होता है। ऐसा (मानकर) विद्यमान चीज़ को उड़ा दिया और जिसमें जन्मा उसे यह आत्मा ही है, यह अन्य को आत्मा है, यह स्वीकार करना भी कठिन पड़ता है, ऐसी स्थिति में गया, प्रभु! आहाहा! आत्मा को तूने आड़ दी थी, प्रभु! आहाहा! वह आड़ अभ्याख्यान के फल में उसकी दशा हीन हो गयी, बापू! हीन भाषा भले तुम्हें लगे, परन्तु उसमें अनन्त दुःख है। पर्याय में अनन्त आनन्द का घात हो गया है। पर्याय में, हों! द्रव्य तो अनन्त आनन्दरूप ही है। उस समय भी (ऐसा ही है) परन्तु पर्याय में अनन्त आनन्द का घात हो गया, उस दुःख की क्या व्याख्या कहें? आहाहा!

इसलिए कहते हैं कि **साक्षात् निर्वाण प्राप्ति के उपायभूत, निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप....** निज स्वरूप में अविचल स्थिति... आहाहा! तीनों की भिन्न-भिन्न व्याख्या की है। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, वह चारित्र यह। **निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप....** आनन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर प्रभु, लबालब भरा है, उसमें अविचलरूप-चलित न हो इस प्रकार से स्थितिरूप अन्दर **सहज-परमचारित्रपरिणतिवाला...** स्वभाविक चारित्रपरिणतिवाला... आहाहा! यह चारित्र है। अरे! भाई! चारित्र की व्याख्या, बापू! कठिन, बापू! किसी व्यक्ति का इसमें कुछ नहीं है। वस्तु की स्थिति ऐसी है, भाई! इसने दरकार नहीं की। छोटी-छोटी उम्र के बालकों की भी स्थिति पूरी हो जाती है तो चले जाते हैं। हार्टफेल हो जाए तो चले जाते हैं। आहाहा!

अभी ही बात की न रामजीभाई ने। कहीं दो व्यक्ति शाम को दुकान बन्द करते होंगे। उसमें डाकू आये, बहुत मारा। मारकर माल ले गये। आहाहा! यह स्थिति है। किस गाँव

में ? रामजीभाई ! अफ्रीका में। शाम को दुकान बन्द करता होगा, उसमें डाकू आये, मारा और मारकर माल-बाल ले गये। आहाहा ! यह स्थिति खड़ी होती है। अस्पताल में ले गये। अन्दर मार पड़े, हड्डियों में दुख हो। आहाहा ! दास को उसने पूछा था दर्द कैसे है ? क्या रहता है। कहा - यहाँ दुःख होता है। दुःख का पिण्ड पूरा आत्मा पड़ा है। शरीर में आत्मा रहा है, दुःख के पिण्ड में प्रभु आनन्द का नाथ कलंकरूप से रहा है। आहाहा ! भव करना, वह कलंक है, प्रभु ऐसा कहते हैं। प्रभु ! तुझे भव नहीं होता। भव का भाव नहीं होता। प्रभु ! यह कलंक है। तीन लोक का नाथ वीतरागस्वरूप, देखो न... आहाहा !

निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप... आहाहा ! स्वभाविक **परमचारित्र-परिणतिवाला...** मैं स्वयं - ऐसा कहते हैं। मुनि स्वयं। आहाहा ! पद्मप्रभमलधारिदेव। ऐसा **परमचारित्रपरिणतिवाला जो मैं...** आहाहा ! पंचम काल में भी यह है या नहीं ? यह तो ९०० वर्ष पहले की बात है। अभी ऐसा कहते हैं कि साधु को अभी शुभयोग ही होता है। प्रभु ! ऐसा रहने दे। शुभयोग ऐसा कहते हैं कि आगे बढ़ नहीं सकते। शुभयोग, धर्म-बर्म तो दूसरी चीज़ है। ऐसा स्वीकार करके प्रभु ! दोष और अदोष स्वीकार कर, ऐसा बचाव करने से यह कहीं आत्मा में लाभ नहीं होगा। आहाहा ! अरे ! जीव ने भी अनादि से यही किया है। अपना अवसर आवे तो अपने दोष का बचाव करके इस प्रकार बाहर में से छूटा है। अन्दर में से तो दोष में से कब छूटे ? आहाहा ! पंच इकट्ठे हुए हों और दोष किया हो, उसे स्वीकार करना पड़े। आहाहा ! नहीं, नहीं मैं उसमें नहीं था। मेरा नाम नहीं। वह तो दूसरे लड़के करते होंगे, उनका होगा। आहाहा ! ऐसे दोष से अलग हुआ परन्तु अन्दर में दोष से अलग नहीं हुआ।

यहाँ कहते हैं, में तो **सहज-परमचारित्रपरिणतिवाला...** परिणतिवाला **जो मैं...** आहाहा ! भाषा देखो ! पाठ ऐसा है न ? '**आदा खु मज्झ णाणे**' यह समयसार की गाथा है। समयसार की यह गाथा बन्ध अधिकार में है। ऐसा जो **सहज-परमचारित्रपरिणतिवाला जो मैं...** वह **साक्षात् निर्वाण प्राप्ति के उपायभूत, निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप...** आहाहा ! **सहज-परमचारित्रपरिणतिवाला जो मैं, उसके (अर्थात् मेरे) सहज चारित्र में भी वह परमात्मा सदा...** उस स्वभाविक चारित्र में भी परमात्मा सदा **सन्निहित (-निकट)...** वर्तता है। मेरे चारित्र में प्रभु निकट वर्तता है। आहाहा ! मेरे चारित्र में पंच

महाव्रत के परिणाम और विकल्प वह मुझमें नहीं वर्तता। आहाहा! उनसे तो मैं दूर वर्तता हूँ। आहाहा! सुनकर इसे पहले ज्ञान तो करना पड़ेगा न? आहाहा!

यहाँ बेचारी एक महिला है। उसका पूरा शरीर अग्नि से (दाह से) जलता है। ललिता भावसार (है)। पूरा शरीर ऐसा कितने ही वर्ष से रोग है। अन्दर पूरा शरीर जलता है। आहाहा! लालचन्दभाई नहीं यहाँ? ....वे। अपने रखियालवाले नेमचन्दभाई! ऐसा करते थे। यहाँ अन्दर कुछ होता होगा। अन्दर परमाणु है, वे ऐसे दर्द करे यहाँ। आहाहा! यह हीरालाल आते हैं न? हीराभाई सेठ। लड़का बैठता है। नहीं बैठते थे? बहुत पैसेवाला है। ५०-६०-७० लाख हैं परन्तु लड़के का विवाह करने गया और (रेल में) चढ़ने गया, वहाँ गिर गया, इतना हाथ कट गया, टुकड़े हो गये। इतना हाथ समाप्त हो गया। यहाँ बैठते हैं। कभी आते हैं, परन्तु व्यक्ति ऐसा जहाँ टुकड़े हुए, अलग पड़ गया। ज्ञायक, मैं ज्ञायक हूँ-ऐसी पढकार किया था। मेरा कटता है, यह नहीं। झवेरचन्दभाई बैठते हैं, वहाँ साथ बैठते हैं। हीराभाई! आहाहा! पैसेवाला है। ५०-६० लाख। बहुत उदार भी है, लाखों रुपये देते हैं, लाखों रुपये पुस्तकों में (देते हैं)। आहाहा! परन्तु कट गया तो मिलने बहुत आते हैं। बड़ा व्यक्ति है, उसकी इज्जत बड़ी और शान्त व्यक्ति। मिलने आते हैं, उसमें बात समय गया और फिर... शुरु हो गयी। उन्हें ऐसा कि गिरा। इतना सब कट गया। जीते जी हाथ कट गया। आहाहा! ऐसा अनन्त-अनन्त बार हुआ है। एक बार नहीं हुआ कहीं। उसकी बात नहीं। आहाहा! ऐसा अनन्त बार हुआ, बापू! विद्यमान बात को भूल गया।

यह विद्यमान भगवान तीन लोक का नाथ, जिसकी रमणता में साक्षात् मुक्ति की प्राप्ति, ऐसा जो चारित्र उसमें **परमात्मा सदा...** परमात्मा अर्थात् देखा? यहाँ परमात्मा लिया। परि-आत्मा। यह आत्मा परमात्मा लिया। आहाहा! **सदा सन्निहित (-निकट)...** वर्तता है। मेरे चारित्र में तो आत्मा निकट वर्तता है। पंच महाव्रत के परिणाम और समिति-गुप्ति, यह तो सब बन्ध के कारण हैं। आहाहा! ऐसा करके फिर एकान्त माने, बापू! आगे चल न सके। ऐसा कहे एकान्त है, बापू! दूसरा व्यवहार होता है। ऐसा निश्चय भान होता है, उसे जब तक वीतराग न हो, तब तक भक्ति के परिणाम आते हैं, महाव्रत के आते हैं, समिति-गुप्ति के आते हैं, देव-गुरु-शास्त्र की वन्दन-भक्ति का बहुमान आता है परन्तु जानता है कि हेय है, त्यागनेयोग्य है, दुःखरूप है। मेरी कमजोरी के कारण आये बिना नहीं

रहते, तथापि वे दु:खरूप हैं। मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा! साक्षात् निर्वाण की प्राप्ति का कारण तो यह चारित्र है। यह ऐसा चारित्र। आहाहा! समझ में आया? प्रभु! समझ में आये ऐसी सादी भाषा में आता है। आहाहा!

परमात्मा... इसमें परमात्मा लिया। चारित्र हुआ न? ज्ञान-दर्शन में तो हीनदशा थी और चारित्र में दशा ऊँची हो गयी। अन्तर में रमते-रमते आनन्द की रमणता... आहाहा! परमात्मा.. परमात्मा.. मैं तो हुआ और मेरी चारित्र की पर्याय में परमात्मा निकट वर्तता है। आहाहा! वापस **परमात्मा सदा...** ऐसा नहीं कि किसी समय ऐसा और किसी समय महाव्रत के परिणाम और आहार लेने जाए, तब भगवान दूर हो जाते हैं-ऐसा नहीं। मेरी चारित्रदशा में तो निरन्तर सदा परमात्मा ही वर्तता है। आहाहा! विद्यमान चीज़ अन्दर पड़ी है। सत् है... सत् है... अस्ति है... सत्तावाली चीज़ है और जो चीज़ है, वह स्वभावरहित नहीं होती और जिसका स्वभाव है, वह मर्यादित नहीं होता। अमर्यादित स्वभाव अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द उसमें भरा है, भगवान! आहाहा! ऐसा **परमात्मा सदा सन्निहित (-निकट) है;...** आहाहा! मेरे चारित्र में भी वह परमात्मा **वह परमात्मा सदा सन्निहित (-निकट) है;...** आहाहा! गजब है न!

नियमसार। समयसार की बात करते हैं परन्तु इस नियमसार में यह है। कितनी ही बात तो समयसार से भी बढ़ जाए, इतनी बात इसमें है। क्योंकि आचार्य स्वयं कहते हैं कि मेरे लिये मैंने तो बनाया है। आहाहा! विशेष दूसरा अब।

प्रत्याख्यान। अब प्रत्याख्यान चौथा बोल। '**दंसणे चरित्ते य। आदा पच्चक्खाणे**' है न? चौथा बोल है। प्रत्याख्यान में कौन है? कि यह प्रत्याख्यान किया, लो यह त्याग किया। विकल्प है, वह प्रत्याख्यान है? प्रत्याख्यान का तो यह अधिकार है। यह निश्चय प्रत्याख्यान का अधिकार है।

भेदविज्ञानी,... इससे प्रत्याख्यान की शुरुआत की। राग के विकल्प से भी भिन्न ऐसा मेरा प्रभु, ऐसा जो मैं **भेदविज्ञानी, परद्रव्य से पराङ्मुख...** विकल्प से और परसंयोग से पराङ्मुख। आहाहा! **तथा पंचेन्द्रिय के विस्ताररहित देहमात्रपरिग्रहवाला...** यह मुनि की दशा। भाव से भी ऐसे ही होते हैं और द्रव्य से भी देहमात्र ही होती है। मुनि को वस्त्र-पात्र नहीं हो सकते। आहाहा! जब तक वस्त्र-पात्र है, तब तक मुनिपना नहीं है। आहाहा!

अन्तर से जहाँ चारित्र हुआ, उसे ऐसा विकल्प होता ही नहीं। ऐसा स्वभाव है। आहाहा! **पंचेन्द्रिय के विस्ताररहित देहमात्रपरिग्रहवाला...** है। एक नग्न शरीर है, बाकी दूसरा सब छोड़ दिया है। आहाहा! वस्त्र नहीं, पात्र नहीं। आहाहा! यह लेखन, लिखना, ताड़पत्र वह कोई चीज़ मेरी नहीं है। आहाहा! वह कोई मेरी चीज़ नहीं है।

देहमात्रपरिग्रहवाला... देखा? मुनि को है। जंगल में बसते हैं, ताड़पत्र पर लिखते हैं। वहाँ ताड़पत्र बहुत हैं न? सूरत के पास कौन सा गाँव वह? अंकलेश्वर नहीं। सजोत, सजोत। सजोत है न? भरूच के पास। पुराना दो हजार वर्ष पुरानी प्रतिमा है। हम वहाँ गये हैं। दो बार जा आये हैं। वहाँ दो बार जा आये हैं। जितने नजदीक हो, उतने में तो सर्वत्र जा आये हैं। दो हजार वर्ष पहले की पुरानी प्रतिमा नीचे है। क्या कहलाता है? भोंयरा में। नीचे भोंयरा जैसा है। दो हजार वर्ष पुरानी दिगम्बर मूर्ति - प्रतिमा है। आहाहा!

कहते हैं कि **देहमात्रपरिग्रहवाला जो मैं...** मुनि कहते हैं... आहाहा! **देहमात्रपरिग्रहवाला जो मैं...** देह तो छूटती नहीं। देह की ममता छूटती है परन्तु देह नहीं छूटती। आहाहा! देह तो उसकी स्थिति प्रमाण छूटेगी, इसलिए ऐसा कहते हैं कि देहमात्रपरिग्रह तो है। आहाहा! उस **देहमात्रपरिग्रहवाला...** ऐसा कहकर मुनिपने की दशा का वर्णन भी किया है। मुनि हों, उन्हें वस्त्र और पात्र भी हों, तो वे मुनि नहीं हैं। कुन्दकुन्दाचार्य सूत्रपाहुड़ में ऐसा कहते हैं कि वस्त्र का एक धागा रखकर मुनिपना माने, मनावे तो निगोद में जायेगा। आहाहा! वस्तुस्थिति ऐसी है। ऐसा पाठ है। सूत्रपाहुड़ की सोलहवीं गाथा में (कहा है कि) निगोद में जायेगा ऐसा पाठ है। सूत का धागा रखकर... आहाहा! मोटरें साथ में रखकर, घास रखकर... आहाहा! सूत्रपाहुड़ में है। कुन्दकुन्दाचार्य का है। काललब्धि भी कुन्दकुन्दाचार्य का है। अष्टपाहुड़ में काललब्धि। वह कहे काललब्धि नहीं। यह और ऐसा निकला। जिसे जैसा रुचे वैसा। समाज को कुछ खबर नहीं। जो बात सामने कहे, वह जय नारायण। आहाहा!

कहते हैं कि मैं जो **देहमात्रपरिग्रहवाला...** और भेदविज्ञानी। अन्दर राग से भिन्न पड़ा हुआ, **परद्रव्य से पराङ्मुख...** हूँ। परद्रव्य से तो पराङ्मुख हूँ। स्वद्रव्य से सन्मुख हूँ। आहाहा! **उसके निश्चय-प्रत्याख्यान में...** उसके सच्चे प्रत्याख्यान में। निश्चय-प्रत्याख्यान में... आहाहा! सच्चा प्रत्याख्यान जो है, वह मुझमें कहते हैं उसमें शुभ-अशुभभाव भी नहीं

है। पुण्य-पाप के परमाणु भी नहीं, सुख-दुःख की कल्पना भी नहीं, छह बोल भी नहीं। मेरे प्रत्याख्यान में मुझे शुभ-अशुभभाव नहीं, पुण्य-पाप नहीं और सुख-दुःख नहीं।

इन छह के सकल संन्यासस्वरूप है.... प्रत्याख्यान में छह के त्यागस्वरूप है। आहाहा! शुभ-अशुभभाव भी प्रत्याख्यान में नहीं आता। ऐसी बात है। छह जोड़ा कहे न? **शुभ, अशुभ, पुण्य, पाप, सुख और दुःख, इन छह के सकल संन्यासस्वरूप...** छह का बिल्कुल त्याग। **(अर्थात् इन छह वस्तुओं के सम्पूर्ण त्यागस्वरूप है) उसमें—वह आत्मा सदा...** ऐसा जो मेरा प्रत्याख्यान... आहाहा! मुनिराज कहते हैं, ऐसा जो मेरा प्रत्याख्यान-पच्चक्खाण, उसमें **(छह वस्तुओं के सम्पूर्ण त्यागस्वरूप है)...** ऐसा। छह में सम्पूर्ण त्यागस्वरूप। जरा भी शुभराग प्रत्याख्यान में है, ऐसा नहीं है। निश्चय-प्रत्याख्यान में, सच्चे प्रत्याख्यान में जरा भी शुभराग है नहीं। शुभराग, वह प्रत्याख्यान है ही नहीं। आहाहा!

उसमें—वह आत्मा सदा आसन्न (-निकट) विद्यमान है;... छह के त्याग में, नित्य प्रत्याख्यान में **उसमें—वह आत्मा सदा आसन्न (-निकट) विद्यमान है;...** उस प्रत्याख्यान में आत्मा ही निकट है। प्रत्याख्यान में कोई शुभराग की मन्दता और बाहर के क्रियाकाण्ड की दशा, वह प्रत्याख्यान में साथ में है, वह प्रत्याख्यान नहीं है। आहाहा! है न? इसमें है न? **सदा आसन्न (-निकट) विद्यमान है;...** आहाहा! और **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि,...** सहज-स्वभाविक **वैराग्यरूपी महल...** यह महल अर्थात् मकान। उसका शिखर, उसका शिखामणि। वैराग्य का जोर है, कहते हैं। मुनिराज को वैराग्य... वैराग्य... उदास... उदास... उदास... चलते सिद्ध हैं। आहाहा! सन्त, दिगम्बर सन्त मुनिवर चलते सन्त हैं, उन्हें मुनिवर कहते हैं। आहाहा!

यह **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि, स्वरूपगुप्त...** स्वरूपगुप्त। स्वरूप में गुप्त, **और पापरूपी अटवी को जलाने के लिए...** पापरूप अटवी अर्थात् जंगल, उसे **जलाने के लिए पावक समान...** अग्नि समान **जो मैं...** आहाहा! **उसके शुभाशुभसंवर में...** उस शुभ-अशुभ संवर में **(वह परमात्मा है),...** शुभ और अशुभ का त्याग है, उसमें संवर है, उसमें परमात्मा है। शुभभाव, वह संवर है - ऐसा नहीं है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव दो के त्यागरूप, ऐसा जो परमात्मा, आत्मा, उसमें संवर है। है न? **शुभाशुभसंवर**

में (वह परमात्मा है),... शुभाशुभ रोकने में—अटकाने में परमात्मा है। उस संवर में परमात्मा है परन्तु संवर कौन सा ? कि यह संवर। ऐसे लेकर बैठे और पाँच पच्चक्खाण करो, दुकान-बुकान का काम थोड़ा करके फिर सवेरे आवे। पूरे दिन प्रौषध करे। जामनगर में बहुत करते हैं। जामनगर में देखा है न! ऐई! आठम के प्रौषध करते हैं न ? पाखी के। आहाहा!

उस **शुभाशुभसंवर में (वह परमात्मा है),...** आहाहा! वह आत्मा है। **तथा अशुभोपयोग से पराङ्मुख,...** अशुभ पाप के परिणाम से तो पराङ्मुख हूँ, विरुद्ध हूँ। **शुभोपयोग के प्रति भी उदासीनतावाला...** शुभोपयोग जो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हैं, उनसे भी उदासीनतावाला हूँ। क्योंकि वह कोई मेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! **और साक्षात् शुद्धोपयोग के सम्मुख...** शुभ-अशुभ परिणामरहित, साक्षात् शुद्धोपयोग। नौ सौ वर्ष पहले पंचम काल के मुनि ऐसा कहते हैं। आहाहा! मुनिवर की ऐसी दशा होती है। वे स्वयं कहते हैं, शुभ-अशुभरहित **शुद्धोपयोग के सम्मुख जो मैं...** मैं तो शुद्धोपयोग के सन्मुख हूँ। मेरा प्रभु शुद्ध है, उसके सन्मुख मेरा उपयोग है। पुण्य-पाप से तो उपेक्षा है। आहाहा!

परमागमरूपी पुष्परस जिसके मुख से झरता है... स्वयं मुनि कहते हैं कि यह जो सब निकलता है, वह परमागम है। मेरे मुख में से जो निकलता है, वह परमागम का रस झरता है। आहाहा! वीतराग की वाणी है, ऐसा कहना है। मेरे घर का कुछ नहीं है। सब परमागम की वाणी है। यह तो पहले भी कह गये हैं। इसकी टीका करनेवाला मैं तो कौन ? गणधर से लेकर मुनि और आचार्य की परम्परा से यह टीका चली आ रही है। आहाहा! वह **परमागमरूपी पुष्परस जिसके मुख से झरता है, ऐसा पद्मप्रभ—उसके शुद्धोपयोग में...** योग में। अन्तिम है न ? संवर और योग। योग अर्थात् यहाँ शुद्धोपयोग लिया है। योग अर्थात् मन, वचन, काया का योग नहीं। योग अर्थात् अन्तर व्यापार शुद्धोपयोग।

उसके शुद्धोपयोग में भी वह परमात्मा विद्यमान है... आहाहा! स्वयं अपनी बात करते हैं। देखा ? **शुद्धोपयोग के सम्मुख जो मैं—परमागमरूपी पुष्परस जिसके मुख से झरता है, ऐसा पद्मप्रभ—उसके शुद्धोपयोग में भी वह परमात्मा विद्यमान है आत्मा रहा हुआ है। कारण कि वह (परमात्मा) सनातन स्वभाववाला है।** वह वस्तु सनातन स्वभाव, अनादि-अनन्त स्वभाववाली है। उसके सन्मुख मेरी दृष्टि है। उसके सन्मुख में मैं स्थिर हूँ। वह मेरा शुद्धोपयोग है। वह शुद्धोपयोग संवर है। शुभोपयोग, वह संवर नहीं है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)